अङ्क-२६
जुलाई-दिसम्बर २०१५

वेदविद्या
ISSN-2230-8962

वेदों के नाम पर पशु-मूर्त्तियों की पूजा एवं मान्यता कब तक ?

प्रो. ओम् प्रकाश पाण्डेय

महाकवि श्रीहर्ष ने अपने 'नैषधीयचरित' में कहा है कि जब वर्षा से मार्ग पङ्किल हो जाता है, तो विद्वज्जन भी कुमार्गगामी हो जाते हैं -

'घनाम्बुना मेघपथेऽतिपिच्छिले क्वचिद् बुधैरप्यपथेनगम्यते।'

विद्या के क्षेत्र में भी कभी-कभी भ्रान्तियों का इतना सघन जाल फैल जाता है कि प्रबुद्ध जन भी उनमें फँस जाते हैं। वेद-वेदाङ्गों के अध्ययन-अनुशीलन के सन्दर्भ में भी इसी प्रकार ऐसी अनेक भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं, जो निर्मूल होती हुई भी विचारशील व्यक्तियों के मन में शूल उत्पन्न करती हैं।

इनमें से एक प्रवृत्ति है वेद-वेदाङ्गों को पशुरूप प्रदान करना। दक्षिण भारत के मन्दिरों में कहीं-कहीं वेद-मन्दिर भी हैं, जिनमें पश्वाकार वेद-मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। जहाँ मन्दिर नहीं हैं, ऐसी अनेक वेद-संस्थाओं के महाशाल में वेदों के पशु-मुख वाले बड़े-बड़े चित्र भित्तियों पर टंगे हैं। इन चित्रों के नीचे जो परिचयात्मक विवरण प्रदत्त हैं, उनमें पद्यात्मक शैली में ऋग्वेद का मुख गधे के आकारवाला है - यजुर्वेद का मुख बकरे की तरह वर्णित है, सामवेद का घोड़े का मुख बतलाया गया है। अक्षमाला सभी के हाथों में पकड़ा दी गयी है। रङ्ग-रूप की दृष्टि से ऋग्वेद श्वेत वर्ण का है, यजुर्वेद पीला है, सामवेद नीलवर्णी है और अथर्ववेद धवलवर्ण का है। यजुर्वेद के हाथ में वज्र है और सामवेद तथा अथर्ववेद घड़े लिये हुए हैं। इनमें प्रसन्न और सौम्य केवल ऋग्वेद है। वैभव और मङ्गलकारक केवल यजुर्वेद को कहा गया है। मूलपद्य इस प्रकार हैं -

ऋग्वेदः श्वेतवर्णः स्याद् द्विभुजो रासभाननः ।
अक्षमालाधरः सौम्यः प्रीतो व्याख्यायनोद्यतः ॥ १ ॥
अजास्यः पीतवर्णः स्याद् यजुर्वेदोऽक्षसूत्रधृत् ।
वामे कुलिशपाणिस्तु भूतिदो मङ्गलप्रदः ॥ २ ॥
नीलोत्पलदलाभासः सामवेदो हयाननः ।
अक्षमालान्वितो दक्षे वामे कुम्भधरः स्मृतः ॥ ३ ॥
अथर्वणाभिधो वेदो धवलो मर्कटाननः ।
अक्षमालान्वितो वामे दक्षे कुम्भधरः स्मृतः ॥ ४ ॥

यह प्रवृत्ति वेदों पर ही नहीं थमी। आगे वेदाङ्गों को भी इसने पश्वाकृतियों के माध्यम से ही प्रस्तुत किया। तदनुसार कल्प को कौए के मुखवाला, निरुक्त को बगले के मुखवाला, ज्यौतिष को बिलौटे (बिडाल) के मुख से युक्त और छन्द को चकोर मुखवाला कहा गया है। इस पद्यकार को अक्षमाला से बड़ा लगाव है, इसलिए इसने शिक्षा, निरुक्त और ज्यौतिष के हाथों में भी अक्षमाला थमा दी है। मूल पद्य इस प्रकार हैं -

कल्पस्तु कुमुदाभः स्याद् वायसास्यो महोदरः ।
कुटारदण्डाञ्जहस्तो मेखलाकुण्डसान्वितः ॥ १ ॥
इन्दुवन्निर्मलं शान्तं वकङ्कं कृशोदरम् ।
पाशपङ्कजसंयुक्तं साक्षसूत्रं सपुस्तकम् ॥ २ ॥
ज्यौतिषं च बिडालास्यमिन्द्रगोपनिभं शुभम् ।
अक्षसूत्रं जपां बिभ्रद् हस्तयोर्दक्षवामयोः ॥ ३ ॥
जपाकुसुमसंकाशं छन्दो ज्ञेयं विचक्षणैः ।
चकोरास्यं जपापुष्पशक्तिं बिभ्रच्छिरवान्वितम् ॥ ४ ॥

कर्मकाण्ड की प्रतीकात्मक अर्थवत्ता के प्रति आस्थावान् होने और मस्तिष्क पर पौनः पुन्येन जोर डालने पर भी मैं ऋग्वेद का रासभ, यजुर्वेद का बकरे, सामवेद का घोड़े और अथर्ववेद का बन्दर के मुख से स्वल्पतम सादृश्य भी स्थापित करने में अपने को असफल पा रहा हूँ। इसी प्रकार वेदाङ्ग कल्प की कौए, निरुक्त की बगुले, ज्यौतिष की बिडाल और छन्द की चकोर के मुख से समानता खोजने में भी विफलता अनुभव कर रहा हूँ। वेद-पाठशाला में पशुशाला का सञ्चालन करनेवाले ये विपश्चिद्वृन्द, अपने इसी क्रम में इतिहास को शूकरमुख बताने से भी नहीं चूके हैं - 'इतिहासः कुशाभासः शूकराख्यो महोदरः।' यह सही है कि पाणिनीयादि शिक्षा-ग्रन्थों में शुद्ध वर्णोच्चारण की समानता बिल्ली के द्वारा अपने शिशु को ले जाने से प्रदर्शित की गयी है, कहीं-कहीं कुछ पक्षियों की ध्वनियों से भी मानव के प्रेरणा लेने की बात कही गयी है, लेकिन वहाँ सादृश्य स्पष्ट है। ये पद्य न तो मुझे कहीं शिक्षा ग्रन्थों में मिले और न पुराणों अथवा स्मृतियों में। जो वेदपाठी वेदों को पश्वाकार मानने से अभी भी विरत नहीं हैं, वे भी इन पद्यों का मूल जिज्ञासा करने पर निर्दिष्ट नहीं कर सके। ये पद्य वेदों की प्रशंसा हैं अथवा निन्दा? क्या वेद इतने कुरूप थे कि वे इन पद्यकारों को गधे, घोड़े, बकरे या बन्दर जैसे दिखे? क्या सामगान घोड़े की हिनहिनाहट - जैसा सुनायी देता है? क्या वेदों के पश्वाकार-निरूपण से वेदपाठियों को उनके प्रति अधिक श्रद्धा उत्पन्न होती है। या वेदानुशीलन के प्रति विशेष प्रेरणा प्राप्त होती है? यदि ऐसी अनुभूति नहीं हो रही है, तो वेदों के गौरव पर आघात करने वाली इस प्रवृत्ति के प्रति इतना आग्रह क्यों है? अन्ततः वेदों का चित्रण पशुमुखी रूप में करने वालों का प्रयोजन क्या था?

मुझे प्रतीत होता है कि वेदों को पशुरूप में अङ्कित करने वाले वास्तव में वेदविरोधी ही थे, जिन्होंने व्यङ्ग्य-विनोद में ये पश्वाकृतियाँ वेदों से चिपकाई। जिन दिनों वैदिक और भ्रमण-परम्परा के मध्य घटाटोप आक्षेप-प्रत्याक्षेप चल रहे थे, शास्त्रार्थ में सत्यान्वेषण के स्थान पर छल और वितण्डा के साथ हेत्वाभासों पर भरपूर बल था, उन्हीं दिनों वेद-विरोधियों ने वेदों को लाञ्छित करने के लिए उनकी इन पशु आकृतियों की परिकल्पना प्रचालित की। स्वयं बुद्धदेव ने तो अपनी वाणी से वेद की कभी निन्दा नहीं की, लेकिन उनके अनुदर अनुयायी इससे न बच सके। सनातनी विद्वत्परम्परा भी बौद्धों के खण्डन में इसी तरह संलग्न थी। उदाहरण के लिए महाकवि अश्वघोष बौद्ध मत के प्रतिपादक सर्वश्रेष्ठ महाकवि हैं। निश्चित ही उनकी काव्य-कला की उत्कृष्टता कालिदास के समकक्ष या उनसे उत्कृष्टतर प्रदर्शित करने में भ्रमण-परम्परा संलग्न रही होगी। लेकिन वैदिक परम्परा के साहित्यानुशीलियों को निश्चित ही यह उचित नहीं लगी होगी और उन्होंने अश्वघोष की आलोचना भी की ही होगी। 'अश्वघोष' नाम मुझे वास्तविक प्रतीत नहीं होता है। उनकी माता का नाम था 'सुवर्णाक्षी' और बेटे का 'अश्वघोष' ? मुझे यह नाम सनातनी पण्डितों के द्वारा व्यङ्ग्यस्वरूप दिया गया प्रतीत होता है, जिसकी समानता 'सामवेदो हयाननः' के साथ स्पष्ट तथा परिलक्षित होती है। यदि सनातनी पण्डितों को अश्वघोष की कविता 'अश्वघोष' (घोड़े की हिनहिनाहट) लग सकती है तो बौद्धविद्वानों को भी 'सामवेद हयानन' दिख सकता है।

इस प्रसङ्ग में दूसरा प्रश्न यह उठता है कि वेदविरोधियों के द्वारा वेदों की निन्दामूलक इन पश्वाकृतियों को वेदानुरागियों ने क्यों अपना लिया? उसका कारण मुझे महाभारत की इन पङ्क्तियों में दिखायी देता है, जो युधिष्ठिर को सम्बोधित हैं -

श्रोत्रियत्येव तेराजन! मन्दकस्याविपश्चितः।
अनुवाकहता बुद्धिर्नैषा तत्त्वार्थदर्शिनी॥

युधिष्ठिर का कोई शुभचिन्तक उनसे कह रहा है कि हे महाराज! इस समय आपकी बुद्धि उस मन्दप्रज्ञ श्रोत्रिय की तरह हो गयी है, जो अनुवाकों को रटते-रटते कुण्ठित हो जाती है और मन्त्र में निहित तात्त्विक अभिप्राय को समझने में असमर्थ रहती है - उसी तरह आप भी यथार्थ को नहीं देख पा रहे हैं।

वेदपाठियों के प्रति अनन्त श्रद्धा रखते हुए भी व्यासोक्ति को ध्यान में रखते हुए यह कहा जाता है कि वेदपाठीबन्धु वेद की अनन्य सेवा करते हुए भी वेदों की पश्वाकृतियों के प्रवर्तन की पृष्ठभूमि में निहित, विरोधियों के वेदनिन्दापरक व्यङ्ग्य को समझने में असमर्थ रहे और गतानुगतिक रूप से इन पश्वाकृतियों की पूजा करते रहे।

'स्कन्दपुराण'[१] (वैष्णवखण्ड २७/५३-५७) के भी, पूजा-मण्डल में, वेदों का स्वरूप अङ्कित करने का निर्देश है, लेकिन उसमें पश्वाकृतियों का सङ्केत भी नहीं है। मूल पद्य इस प्रकार हैं -

पूर्वे न्यसेत तु ऋग्वेदमक्षमालाघटं सितं ।
खर्वं लम्बोदरं सौम्यं पद्मनेत्रं सिताम्बरम् ।।
याम्ये न्यसेद् यजुर्वेदं मध्यमाङ्गं कृशोदरम्
पिङ्गाक्षं स्थूलकण्ठञ्च पीतं चारुणवाससम् ।।
अक्षसूजं करे वामे दक्षे वजञ्च बिभ्रतम् ।
पश्चिमे सामवेदञ्च प्रांशुमादित्य वर्चसम् ।।
दक्षेऽक्षमालां वामे च, धृतवन्तं करे दरम् ।
स्वर्णवस्त्रं विशालाक्षं विन्यस्येद् गायनोद्यतम् ।।
अथर्वाणं न्यसेत् सौम्ये सिताङ्गं नीलकससम् ।
वामेऽक्षसूत्रं च दक्षे हि खड्गाङ्गं बिभ्रतं करे।
वह्न्योजासञ्च ताम्राक्षं वयसा स्थविरं तथा ।।

इन पद्यों में वेदों के मानवीकरण की प्रवृत्ति तो परिलक्षित होती है, लेकिन पश्वाकृतियों को उन पर चिपकाकर उनके गौरव को धूमिल करने की चेष्टा दूर-दूर तक नहीं है।

मीमांसा में जिस प्रकार देवता का स्वरूप, मन्त्रमय माना गया है, उसी प्रकार वेदों का स्वरूप भी मन्त्र-संहितात्मक ही है। उनका कोई दूसरा स्वरूप हो ही नहीं सकता है। 'पञ्चतन्त्र' और 'हितोपदेश' की पशु-पक्षियों की कथाओं से भी इन पश्वाकृतियों की तुलना नहीं की जा सकती है, क्योंकि उन ग्रन्थों के लेखक पशु-पक्षियों के माध्यम से नीति, बुद्धि, व्यवहार, सङ्कट से बचने के उपायों, विश्वस्त और अविश्वस्त की पहचानत इत्यादि की शिक्षा देते हैं - जबकि ये पश्वाकृतियाँ ऐसी कोई शिक्षा नहीं देती हैं।

उचित तो यही है कि वेदाराधन के नाम पर अब हम वेदों की इन पशु-मूर्तियों की निरर्थक पूजा-प्रवृत्ति से विराम लें।

प्रो. ओम् प्रकाश पाण्डेय
पूर्व सचिव- महर्षि सान्दीपनि राष्ट्रीय वेद विद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन
पूर्व अध्यक्ष – संस्कृत विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय
बी १/४, विक्रान्त खण्ड, गोमतीनगर, लखनऊ २२६०१०

[१] स्क.पु., पृ. ८५० मनसुखराय मोर, संस्करण, कोलकाता